03hilal:Layout 1 2/5/2016 3:50 PM Page 380

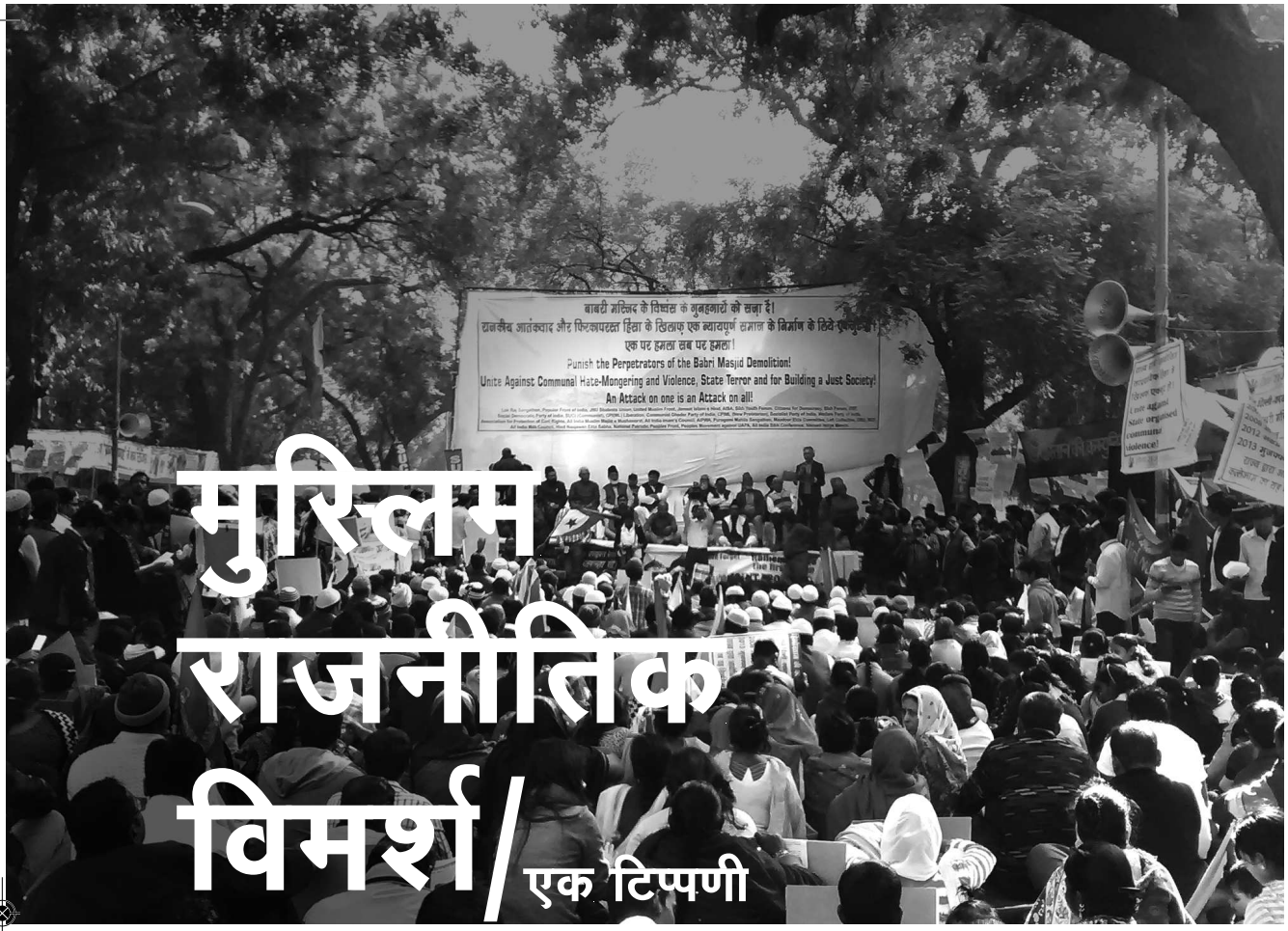

मुस्लिम राजनीतिक विमर्श/ एक टिप्पणी

हिलाल अहमद

उत्तर-औपनिवेशिक संदर्भ के तहत भारतीय मुसलमानों का राजनीतिक वृत्तांत प्रस्तुत करने के दो सम्भव तरीक़े हो सकते हैं। पहला, मुसलमानों के 'उत्थान और पतन' पर केंद्रित विवरण तैयार किया जा सकता है। इस तरह के ब्योरे में कई मुद्दे, घटनाएँ और प्रकरण (जैसे उपमहाद्वीप में इस्लाम का आगमन, मुस्लिम शासन, मुस्लिम अलगाववाद, विभाजन, उर्दू, अलीगढ़, बाबरी मस्जिद, आरक्षण इत्यादि) शामिल किये जाते हैं। इनके ज़रिये या तो मुसलमानों के सेकुलर रवैये का महिमामण्डन किया जाता है, या फिर उनके माध्यम से मुस्लिम उत्पीड़न रेखांकित होता है। ऐसे ऐतिहासिक मसविदे वास्तविक राजनीतिक घटनाओं के प्रति ईमानदार तो रहते हैं, लेकिन वे मुस्लिम राजनीतिक विविधता की विवरणात्मक शिनाख़्त नहीं कर पाते। दूसरा, मुस्लिम राजनीतिक समूहों के बहुआयामी संदर्भों को उत्तर-औपनिवेशिक वास्तविकताओं के साथ समझने का प्रयास करना। इसके तहत इस्लाम और मुसलमानों से जुड़ा विराट आख्यान प्रस्तुत करने की बजाय कुछ विशेष संदर्भ-बिंदुओं की पहचान की जा सकती है जिससे उभरने वाली एक रूपरेखा को मुस्लिम राजनीतिक विमर्श की संज्ञा दी जा सकती है। इस मक़सद से तीन महत्त्वपूर्ण पहलुओं की पहचान की जा सकती है :

03hilal:Layout 1 2/5/2016 3:50 PM Page 381

मुस्लिम राजनीति की गठबंधनीय प्रकृति, संवैधानिक भाषा के पालन, और सामाजिक न्याय के लिए मुस्लिम अस्मिता का आह्वान। मेरा ख़याल है कि इन पहलुओं को किसी भी तरह की प्रातिनिधिक विशेषताओं के रूप में देखने से हमें परहेज़ करना चाहिए। दरअसल, हमें यह तथ्य स्वीकारना होगा कि मुस्लिम राजनीति एक बेहद विविध और बहुमुखी घटना है। हमें इन तीनों पहलुओं को अवधारणात्मक प्रासंगिक बिंदुओं की तरह ग्रहण करना चाहिए जिन पर ध्यान केंद्रित करके समकालीन मुस्लिम राजनीतिक बहस की जटिलता को समझा जा सकता है।

गठबंधन की राजनीति

उत्तर-विभाजन परिदृश्य में भारत का 'एकीकरण' अक्सर राजनीतिक संक्रमण के रैखिक विकास के माध्यम के द्वारा समझा जाता है। तीन अपवादों (हैदराबाद, जूनागढ़ और कश्मीर) को छोड़ कर भारतीय संघवाद की कहानी वैसे तो सरल और सीधी है, लेकिन भारतीय संघ में विभिन्न रियासतों का विलय और 1956 में राज्यों का पुनर्गठन वास्तव में एक बहुआयामी प्रक्रिया थी जिसने विभिन्न स्तरों पर मुस्लिम राजनीतिक प्रतिक्रियाओं को शक्ल दी।

दक्षिण भारत में मुस्लिम लीग की राजनीति एक ग़ौर करने लायक़ मिसाल है। विभाजन ने भारत में मुस्लिम लीग के संगठनात्मक ढाँचे पर प्रतिकूल प्रभाव डाला। लीग के कई समर्थक और स्थानीय नेता या तो पाकिस्तान चले गये या उत्तर भारत में कांग्रेस में शामिल हो गये। मुस्लिम लीग केवल दक्षिण भारत में ही आंशिक रूप से बची रही। इसका सबसे बड़ा कारण मद्रास प्रांत में इसकी सांगठनिक शक्ति और इसके मुख्य नेताओं का क्षेत्रीय झुकाव था। इसके अलावा एक और महत्त्वपूर्ण भू-राजनीतिक कारक था। दक्षिण भारत में मुसलमानों की हालत 1950 के दशक में उत्तर भारत से काफ़ी अलग थी। यह सच है कि निजाम का अधीनस्थ हैदराबाद राज्य दक्षिण भारत में विभाजन से सबसे बुरी तरह प्रभावित हुआ था, लेकिन इन क्षेत्रों (मद्रास प्रांत, मैसूर, मालाबार क्षेत्र, और त्रावणकोर और कोचीन रियासतों) के मुस्लिम समुदायों को उत्तर भारत के मुसलमानों की तरह राज्य-मशीनरी के उस शत्रुतापूर्ण रवैये का सामना नहीं करना पड़ा था जिसका नतीजा उत्तर के मुसलमानों के हाशियाकरण में निकला था। यही कारण है कि पचास के दशक में दक्षिण का राजनीतिक माहौल मुस्लिम समूहों, विशेष रूप से मुस्लिम लीग के लिए, राजनीतिक प्रयोग करने लायक़ था।

मद्रास मुस्लिम लीग ने 1951 में स्थानीय स्तर पर चुनावी गठबंधन के लिए कांग्रेस का दरवाज़ा खटखटाया। पुराने तर्क के मुताबिक़ ही, कि लीग ही भारतीय मुसलमानों की एकमात्र प्रतिनिधि संगठन है, यह सुझाव दिया गया कि कांग्रेस को लीग के मुस्लिम उम्मीदवारों का समर्थन करना चाहिए और किसी भी मुस्लिम उम्मीदवार को खड़ा करने से परहेज़ करना चाहिए। इस दिलचस्प प्रस्ताव को इसकी प्रासंगिक विशिष्टता में देखा जाना चाहिए। पृथक् निर्वाचन, सीटों का आरक्षण और आनुपातिक प्रतिनिधित्व के सुझाव को पहले ही ख़ारिज किया जा चुका था। इस परिदृश्य में लीग के लिए एकमात्र विकल्प कुछ सुरक्षित मुस्लिम सीटों की पहचान करना रह गया था। यह कम से कम मद्रास प्रांत में तो मुश्किल नहीं ही था। 1951 के चुनाव में निर्वाचन क्षेत्रों का गठन जनसंख्या के अनुमान के आधार पर किया जा रहा था, और किसी भी उचित परिसीमन के अभाव में मुस्लिम बहुल ज़िलों की पहचान आसान थी। हालाँकि ऐसा भी लगता है कि लीग मुस्लिम वोटों मिलने के प्रति पूरी तरह से आश्वस्त नहीं थी। चूँकि उसे बड़े स्तर की चुनावी राजनीति का कोई अनुभव नहीं था, इसलिए लीग के नेता आम चुनाव में मुस्लिम समर्थन के बारे में आशंकित रहते थे। यही थी वह अपरिहार्यता जिसके कारण उन्हें लाज़िमी तौर पर मुस्लिम सीटों के लिए कांग्रेस के साथ बातचीत करनी पड़ रही थी।

विशेष रूप से 1951 के संदर्भ में कांग्रेस के दृष्टिकोण से लीग के साथ चुनावी 'सौदे' की सम्भावना मुश्किलों में घिरी हुई थी। बेशक, इस प्रस्ताव की भावना चुनावी गणित की वजह से उपजी

03hilal:Layout 1 2/5/2016 3:50 PM Page 382

केरल विधानसभा में 'मुस्लिम प्रतिनिधित्व' एक बहुस्तरीय घटना थी। ... मुस्लिम मतदाताओं ने सिर्फ़ मुस्लिम उम्मीदवारों को ही वोट नहीं दिया था। साथ ही जिन मुस्लिम उम्मीदवारों ने चुनाव लड़ा था, वे सभी मुस्लिम हितों की पैरोकारी से प्रतिबद्ध नहीं थे। फिर भी राजनीतिक खिलाड़ी के रूप में मुस्लिम लीग के वैध अस्तित्व की सम्भावना से इनकार नहीं किया जा सकता था।

थी, लेकिन, इस तरह की सम्भावना पचास के दशक की परिस्थितियों में अस्वीकार्य थी। नेहरू यह सुनिश्चित करने के लिए उत्सुक थे कि चुनावी-तंत्र को भी धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांतों के मुताबिक़ चलना चाहिए ताकि उसमें जनता की भागीदारी नागरिक के रूप में हो सके। जैसा कि कांग्रेस हाई कमान से उम्मीद थी, उसने लीग का प्रस्ताव ठुकरा दिया और किसी भी औपचारिक गठबंधन के बिना राज्य का चुनाव लड़ा । दूसरी तरफ़ मुस्लिम लीग ने एक क्षेत्रीय पार्टी के रूप में चुनाव लड़ा और वह लोकसभा की केवल एक सीट हासिल कर सकी।

इस चुनावी पराजय ने लीग को भविष्य की रणनीति पर दोबारा सोचने के लिए मजबूर कर दिया। लीग के वरिष्ठ नेता बी. पोकर मद्रास प्रांत के मलप्पुरम लोकसभा क्षेत्र से जीत गये थे, लेकिन इस सफलता को संतोषजनक नहीं माना जा सकता था, ख़ास तौर से जब पार्टी को अपनी मुख्य वैचारिक स्थिति के रूप में 'मुस्लिम ख़ासियत' पर भरोसा था। लीग की दुविधा समझने के लिए हमें मलप्पुरम लोकसभा क्षेत्र के विस्तृत परिणाम पर नज़र डालनी होगी। यह त्रिकोणीय चुनाव था। पोकर ने सीट तो जीती थी, लेकिन उन्हें केवल 38.98 प्रतिशत वोट ही मिले थे। अन्य दो उम्मीदवारों (कांग्रेस की टी.वी. चाठुकुट्टी नायर और भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (भाकपा) की कुम्हली करिकेदन) को क्रमश: 30.65% और 30.38% वोट प्राप्त हुए थे (आम चुनाव के बारे में सांख्यिकीय रिपोर्ट, 1951 : 127)। लीग आम चुनाव में मुस्लिम वोटों पर निर्भर नहीं रह सकती है— परिणामों ने यह आशंका तथ्यात्मक रूप से सही साबित कर दी थी। मलप्पुरम ज़िला मुस्लिम बहुल क्षेत्र था और लीग को यहाँ से कहीं बेहतर प्रदर्शन की उम्मीद थी।

केरल राज्य के गठन ने, जिसकी मुस्लिम आबादी लगभग 18 प्रतिशत थी, लीग को चुनावी तौर पर महत्त्वपूर्ण बना दिया। पार्टी ने केरल में राजनीतिक 'दुश्मन' के रूप में कम्युनिस्टों की 'खोज' की, और कांग्रेस और प्रजा सोशलिस्ट पार्टी (प्रसोपा) के साथ एक रणनीतिक गठबंधन बनाने का मौक़ा खोज लिया। भाकपा के नेतृत्व वाली कम्युनिस्ट सरकार को उखाड़ फेंकने के लिए जनांदोलन कांग्रेस,

03hilal:Layout 1 2/5/2016 3:50 PM Page 383

लीग और प्रसोपा के गठबंधन ने शुरू किया था । आंदोलन के नतीजे काफ़ी कुछ उम्मीद के मुताबिक़ निकले। केंद्र सरकार ने हस्तक्षेप किया और निर्वाचित सरकार गिरा दी। गठबंधन की इस 'सफलता' ने लीग और कांग्रेस के बीच चुनावी समझौते के लिए रास्ता साफ़ कर दिया। यह व्यावहारिक समायोजन दोनों भागीदारों के लिए बेहद अनुकूल निकला। कांग्रेस ने 80 सीटों पर चुनाव लड़ा और 63 जीत कर वोटों का 45.37% प्राप्त करने में कामयाब रही । दूसरी ओर मुस्लिम लीग भी लाभ वाली स्थिति में थी। उसने केवल 12 विधानसभा सीटों पर चुनाव लड़ा और 11 पर जीत दर्ज की। इन सीटों पर उसे 47.79% वोट मिले।

चुनाव के बाद की कहानी भी उतनी ही दिलचस्प निकली। चूँकि कांग्रेस को स्पष्ट बहुमत था, इसलिए उसे सरकार बनाने के लिए लीग के समर्थन की ज़रूरत नहीं थी। लेकिन, राजनीतिक परिस्थिति कुछ और कह रही थी। साझा दुश्मन के तौर पर कम्युनिस्टों का विरोध करने के लिए हुए गठबंधन को समाजवादी ढर्रे सामाजिक पुनर्निर्माण की नीति से विचलन के तौर पर नहीं देखा जा सकता था, क्योंकि मुस्लिम लीग ने अपनी विचारधारा में इस नीति को शामिल कर लिया था। नेहरू की तरफ़ से स्पष्ट रूप से बहुसंख्यक साम्प्रदायिकता और अल्पसंख्यक साम्प्रदायिकता के बीच अंतर परिभाषित किया जा चुका था। इसके बावजूद एक वैध भागीदार के रूप में सरकार में मुस्लिम लीग को शामिल करना आसान काम नहीं था। आख़िरकार मुस्लिम लीग ने राज्य के मुसलमानों का प्रतिनिधि संगठन होने का दावा छोड़ा नहीं था। उसने खुद को चुनावों में मुसलमानों के मसीहा के रूप में पेश किया था। इसलिए इस संदर्भ में दोनों भागीदार के लिए उपयुक्त सौदे पर पहुँचना ज़रूरी था। नतीजतन, एक उचित फ़ार्मूले पर सहमति बनती दिखी। मुस्लिम लीग को विधानसभा-अध्यक्ष का पद और राज्यसभा की एक सीट दी गयी। इस तरह कांग्रेस ने अपनी सरकार का गठन किया।

केरल में मुस्लिम लीग के प्रारम्भिक अस्तित्व की इस संक्षिप्त कहानी को हमें न तो मुस्लिम कुलीन वर्ग की भ्रष्ट साम्प्रदायिक राजनीति के तौर पर देखना चाहिए और न ही सेकुलरवाद की आभासी हार के तौर पर। बल्कि, हमें इस अत्यधिक जटिल राजनीतिक विन्यास पर निगाह डालनी चाहिए। 1960 में केरल विधानसभा में 'मुस्लिम प्रतिनिधित्व' एक बहुस्तरीय घटना थी। मुस्लिम लीग के इतर, भाकपा और कांग्रेस में भी मुस्लिम निर्वाचित सदस्य थे। यह पहलू लीग द्वारा ख़ुद को मुसलमानों के एकमात्र प्रतिनिधि के रूप में पेश करने के उसके दावे के विपरीत था। दूसरी ओर लीग ने भी हथियार नहीं डाले थे। इसने राजनीतिक दल के रूप मान्यता प्राप्त करते हुए न केवल ख़ुद को मजबूत किया था, बल्कि राज्यसभा के माध्यम से राष्ट्रीय संसद में प्रवेश करने में भी कामयाब हो गयी थी। कहा जा सकता है कि केरल के मुस्लिम मतदाताओं ने सिर्फ़ मुस्लिम उम्मीदवारों को ही वोट नहीं दिया था। साथ ही जिन मुस्लिम उम्मीदवारों ने चुनाव लड़ा था, वे सभी मुस्लिम हितों की पैरोकारी से प्रतिबद्ध नहीं थे। फिर भी राजनीतिक खिलाड़ी के रूप में मुस्लिम लीग के वैध अस्तित्व की सम्भावना से इनकार नहीं किया जा सकता था।

राजनीति की संवैधानिक भाषा

अब हम मुस्लिम राजनीतिक विमर्श के दूसरे पहलू पर नज़र डालते हैं। यह है संविधानवाद का पालन। ध्यान रहे कि सभी चर्चित मुस्लिम राजनीतिक माँगों को हमेशा से विशुद्ध क़ानूनी-संवैधानिक संदर्भ में ही परिभाषित किया जाता रहा है। बाबरी मस्जिद प्रकरण इस पहलू पर प्रकाश डालने के लिए बड़ा उदाहरण है। दिल्ली घोषणा, जिसे ऑल इण्डिया बाबरी मस्जिद सम्मेलन (बीएमएमसीसी) द्वारा 22 दिसम्बर, 1986 को अपनाया गया था, बहुत स्पष्ट रूप से बाबरी मस्जिद को प्रमुख मुस्लिम दृष्टिकोण से देखते हुए इसे भारत की राष्ट्रीय विरासत के भाग के तौर पर पेश करती है। वह इसे अल्पसंख्यकों के लिए संवैधानिक अधिकारों से जोड़ कर देखती है। इस घोषणा के अनुसार :

03hilal:Layout 1 2/5/2016 3:50 PM Page 384

पसमांदा राजनीति साम्प्रदायिकता और जाति आधारित आरक्षण के जटिल संबंधों की रचनात्मक पुनर्व्याख्या करती है। यह माँग कि मुसलमान और ईसाई 'दलित' जातियों को भी अनुसूचित जाति का दर्जा दिया जाना चाहिए— इस तथ्य को रेखांकित करती है कि जाति आधारित शोषण किसी विशेष धार्मिक समूह से संबंधित नहीं है।

> सम्मेलन बाबरी मस्जिद को राष्ट्रीय धरोहर और ऐतिहासिक स्मारक के रूप में मानता है। लेकिन सब से ऊपर, इस्लामी इबादत की जगह के रूप में, जिसकी पवित्रता का सार्वभौमिक तौर पर सभी विवेकी व्यक्तियों द्वारा सम्मान किया जाना चाहिए, चाहे जो भी उनके धर्म हों, और जिसका उल्लंघन न केवल मुसलमानों की धार्मिक भावनाओं के बरअक़्स अपराध के रूप में माना जाना चाहिए बल्कि यह धर्मनिरपेक्ष व्यवस्था के ख़िलाफ़ भी है, क्योंकि यह संविधान के अनुच्छेद 25 का उल्लंघन है।

बाबरी प्रकरण की यह परिभाषा उसके राष्ट्रीय महत्त्व पर ज़ोर देती है। ध्यान रहे कि जब सरकार ने 1987 में विवाद सुलझाने के लिए अयोध्या के स्थानीय मुसलमानों को भी शामिल करने की कोशिश की तो बीएमएमसीसी ने बयान जारी करते हुए कहा था कि बाबरी मस्जिद स्थानीय मुद्दा नहीं है। बाबरी मस्जिद मुस्लिम वक़्फ़ की सम्पत्ति है और यह प्रतीकात्मक रूप से पूरे मुस्लिम समुदाय से जुड़ा हुआ मसला है। मुस्लिम दृष्टिकोण का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू यह है कि बाबरी मामले को धार्मिक या शरीयत के कोण को कम से कम महत्त्व दिया गया है। उदाहरण के लिए 1990 में शिलान्यास के दौरान बाबरी मस्जिद की स्थिति परिभाषित करते हुए ऑल इण्डिया मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड (एआईएमपीएलबी) ने कहा था :

> मस्जिद का टाइटल और मालिकाना हक़ और इसकी जगह अल्लाह में निहित है। न तो मस्जिद को बदला जा सकता है, न ही बेचा और न ही ख़रीदा जा सकता है, न ही किसी भी व्यक्ति या समूह या सरकार को समझौता के माध्यम से स्थानांतरित किया जा सकता है, न ही सरकार द्वारा अधिग्रहीत किया जा सकता हैं। निर्विवाद ऐतिहासिक और क़ानूनी सबूत स्पष्ट करते हैं कि बाबरी मस्जिद एक मस्जिद है। उत्तर प्रदेश सरकार ने अपने हलफ़नामे में इस तथ्य को स्वीकार किया है। इसलिए शरीयत में इसकी स्थिति मस्जिद की है। इसलिए एक मस्जिद की स्थिति को बहाल किया जाना चाहिए जैसी कि वह 22 दिसम्बर, 1949 तक थी। (एमआई डी 97, 20)

इन दो उदाहरणों से पता चलता है कि मुस्लिम राजनीतिक कुलीन वर्ग संविधान को 'पॉलिटिकल रिज़र्व' के तौर पर देखता है ताकि मुस्लिम माँगों को अधिकारों की भाषा में प्रकट किया जा सके। यह वर्ग भारतीय संविधान के उदारतावादी मूल्यों को दोहराते हुए लोकतांत्रिक संस्थाओं के अस्तित्व की रैडिकल विवेचना करने का प्रयास करता है।

अस्मिता और सामाजिक न्याय

राजनीतिक घटना के रूप में मुस्लिम आरक्षण मुस्लिम राजनीतिक विमर्श के तीसरे पहलू का परिचय देता है। मुस्लिम आरक्षण पर हाल ही में हुई बहस बेहद अहम तरीक़े से 'मुस्लिम पिछड़ेपन' की व्यापक धारणा से आगे चली गयी है। हमें इस संबंध में कुछ पसमांदा मुस्लिम संगठनों द्वारा पारित

03hilal:Layout 1 2/5/2016 3:50 PM Page 385

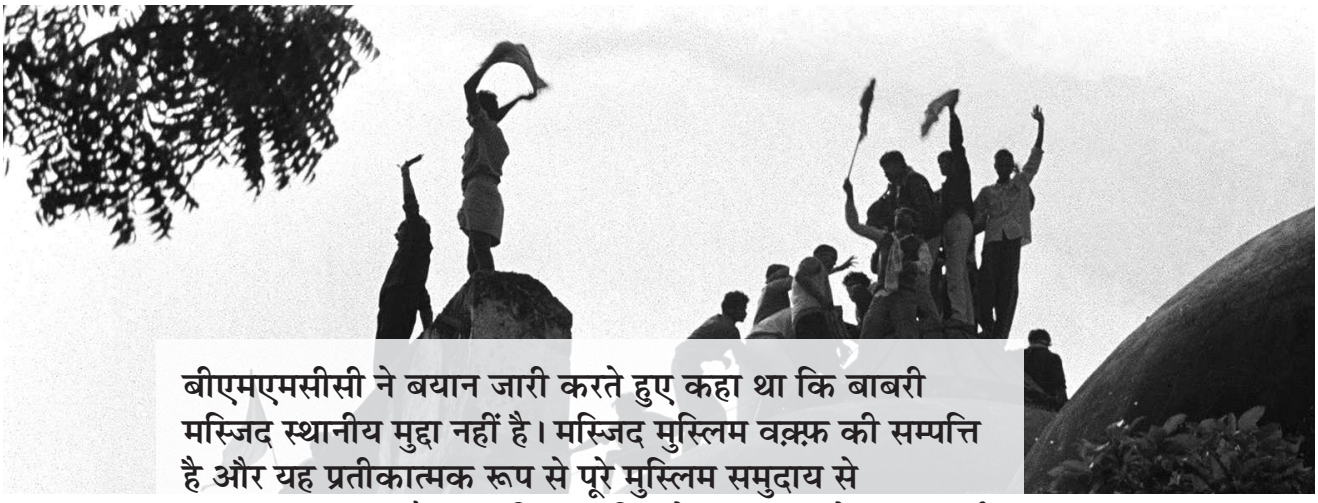

बीएमएमसीसी ने बयान जारी करते हुए कहा था कि बाबरी मस्जिद स्थानीय मुद्दा नहीं है। मस्जिद मुस्लिम वक़्फ़ की सम्पत्ति है और यह प्रतीकात्मक रूप से पूरे मुस्लिम समुदाय से जुड़ा हुआ मसला है। ... मुस्लिम दृष्टिकोण का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू यह है कि बाबरी मामले को धार्मिक या शरीयत के कोण को कम से कम महत्त्व दिया गया है।

पसमांदा मुसलमानों का राजनीतिक एजेंडा : लोक सभा चुनाव, 2014 से एक महत्त्वपूर्ण प्रासंगिक आलोचना प्राप्त होती है। यह घोषणा महज़ सूक्ष्म क़ानूनी-संवैधानिक तरीक़े से आरक्षण की बहुमुखी पड़ताल ही नहीं करती, बल्कि जाति के प्रश्न और दूसरे राजनीतिक मुद्दों, जैसे कि भूमण्डलीकरण, साम्प्रदायिकता, सामाजिक-धार्मिक समूहों की आंतरिक विविधता, स्त्रियों के पर्याप्त प्रतिनिधित्व और भ्रष्टाचार के साथ उसके संबंध को भी स्थापित करती है :

> इस घोषणा के तीन महत्त्वपूर्ण बिंदु हैं जिन पर प्रकाश डाला जाना चाहिए। घोषणा की माँग हैं : संविधान के (अनुसूचित जाति) आदेश, 1950 के पैरा (3) को ख़त्म किया जाए ताकि दलित मुसलमानों और दलित ईसाइयों को विधिवत् अनुसूचित जाति की सूची में शामिल किया जा सके और उनके ख़िलाफ़ भारतीय संविधान के अनुच्छेद 341 के तहत धर्म के आधार पर भेदभाव न किया जाए।

इस संदर्भ में संविधान (अनुसूचित जाति) आदेश, 1950 की यह उक्ति महत्त्वपूर्ण हो जाती है : कोई भी व्यक्ति जो हिंदू, सिख या बौद्ध धर्म से अलग धर्म मानता हो, उसे अनुसूचित जाति का सदस्य नहीं समझा जाएगा।

1950 में पारित किये गये मूल आदेश के अनुसार, केवल हिंदू जाति-समूह ही अनुसूचित जाति की सूची में शामिल किये जाने के पात्र थे। इस क्रम में सिख और बौद्ध जाति समूहों को समायोजित करने के लिए इसमें क्रमशः 1956 और 1990 में संशोधन किये गये। यह आदेश अनुसूचित जाति की श्रेणी का 'साम्प्रदायीकरण' करता है। यह इस मजबूत अवधारणा पर आधारित है कि जाति आधारित सामाजिक असमानता केवल हिंदू धर्म के प्रदूषित रूप का प्रतिबिंब है। इस तर्क के अनुसार व्यापक हिंदू समाज के सुधार के लिए आरक्षण के माध्यम से ख़राब 'सामाजिक प्रथाओं' का उन्मूलन करने की आवश्यकता है। इस अर्थ में यह आदेश दलित समुदाय द्वारा स्वतंत्र पहचान और गरिमा के लिए चले लम्बे संघर्ष की उपेक्षा करके उसे हिंदू धर्म के दायरे में रखता है । इसके अलावा यह आदेश हरिजन और आदिवासी सहित पूरे हिंदू समाज की अविभाज्य एकता की हिंदू-दक्षिणपंथी अपील को

03hilal:Layout 1 2/5/2016 3:50 PM Page 386

वैधता (परोक्ष रूप से) प्रदान करते हुए भी दिखाई देता है ।

इसके विपरीत पसमांदा राजनीति साम्प्रदायिकता और जाति आधारित आरक्षण के बीच के जटिल संबंधों की रचनात्मक पुनर्व्याख्या करती है। यह माँग कि मुसलमान और ईसाई 'दलित' जातियों को भी अनुसूचित जाति का दर्जा दिया जाना चाहिए— इस तथ्य को रेखांकित करती है कि जाति आधारित शोषण किसी विशेष धार्मिक समूह से संबंधित नहीं है। अन्य पिछड़े वर्ग की श्रेणी को नये स्वरूप में समझने का प्रस्ताव भी भारतीय सेकुलरवाद की जाति आधारित आरक्षण के संबंध में बहुत ही अलग व्याख्या पेश करता है। यह घोषणा पत्र राज्य से निम्नलिखित क़दम उठाने की अपील करता है :

> केंद्र और राज्य स्तर पर ओबीसी कोटे के भीतर अतिपिछड़ी जातियों (ईबीसीज़) (बिहार फ़ार्मूला) के लिए कोटा होना चाहिए जहाँ पर पिछड़ी जाति के मुसलमानों को समान रूप से सम्मिलित हिंदू जाति समूहों के साथ रखा जा सके। यह पिछले लोकसभा चुनाव (2014) से पहले कांग्रेस पार्टी द्वारा लाये गये अन्य पिछड़ा वर्ग-अल्पसंख्यक के लिए 4.5% उप-कोटा की तुलना में अधिक विवेकपूर्ण और ग़ैर-साम्प्रदायिक माँग है।

ओबीसी श्रेणी के भीतर ईबीसीज़ श्रेणी बनाने की माँग पिछड़ेपन और समाज के व्यापक सामाजिक-आर्थिक स्तरीकरण के बीच एक महत्त्वपूर्ण कड़ी स्थापित करती है। सिद्धांततः यह प्रस्तावित पुनर्गठन अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए जाति आधारित आरक्षण का महत्त्व को पहचानता है। यह इस तथ्य को भी रेखांकित करता हैं कि ओबीसी समरूप श्रेणी नहीं है। ठीक इस कारण से, पिछड़ेपन की बहुपरती घटना से निपटने के लिए विभेदित दृष्टिकोण की माँग की गयी है।

अंत में यह घोषणा आरक्षण की सीमा को पहचानती है और सकारात्मक कार्रवाई के लिए एक व्यापक योजना विकसित करने के लिए राजनीतिक प्रतिष्ठान से आह्वान करती है। उसने इस बात पर ज़ोर दिया है :

> राज्य का कारीगरों, शिल्पकारों, खेतिहर मजदूरों और अन्य कुटीर और लघु उद्योगों को समर्थन प्रभावी सब्सिडी, ऋण और ऋण सुविधा, विपणन सहायता, कौशल उन्नयन, आदि के माध्यम से बहुत ही ज़रूरी है।

इस मामले में राज्य से उन व्यावसायिक समूहों की समस्याओं से निपटने के लिए बहुत बड़ी भूमिका निभाने के लिए कहा गया है जिन्हें देश में भूमण्डलीकरण के प्रत्यक्ष हमले का सामना करना पड़ रहा है। यह माँग जाति आधारित नहीं है; बल्कि समूहों की व्यावसायिक पहचान पर इसलिए प्रकाश डाला गया है ताकि विभिन्न स्तरों पर प्रभावित हो रहे जातिगत समुदायों की स्थिति को रेखांकित किया जा सके।

मुस्लिम राजनीति के महत्त्वपूर्ण पहलुओं में से कुछ पर यह संक्षिप्त चर्चा हमें एक दिलचस्प निष्कर्ष प्रदान करती है। मुस्लिम राजनीतिक समूहों ने प्रतिस्पर्धात्मक राजनीति में सक्रिय रूप से भाग लिया और अनुकूल राजनीतिक गठबंधनों की स्थापना की। मुस्लिम माँग ने राजनीतिक रूप से स्वीकार्य बनने के क्रम में संविधान से प्रेरणा ली और अधिकार की क़ानूनी भाषा को आत्मसात् किया। क़ानूनी तंत्र के महत्त्वपूर्ण पालन से हाल ही के नीतिगत विमर्शों, ख़ास तौर पर पिछड़ेपन और आरक्षण पर बहस में, सीधे जवाब देने में मुस्लिम समूहों को मदद मिली। इसी कारण से पसमांदा समूह पसमांदा मुस्लिम और या व्यावसायिक पिछड़ेपन की पहचान को छोड़े बग़ैर अपनी सेकुलर स्थिति खुल कर स्पष्ट कर पाये। मुस्लिम राजनीति की इस पहचान को न केवल मुस्लिम राजनीतिक अस्मिताओं पर सारगर्भित बहस शुरू करने के लिए बल्कि उत्तर-औपनिवेशिक भारत में सामाजिक परिवर्तन की दशा और दिशा के बारे में बात करने के लिए भी मान्यता मिलनी चाहिए।

03hilal:Layout 1 2/5/2016 3:50 PM Page 387

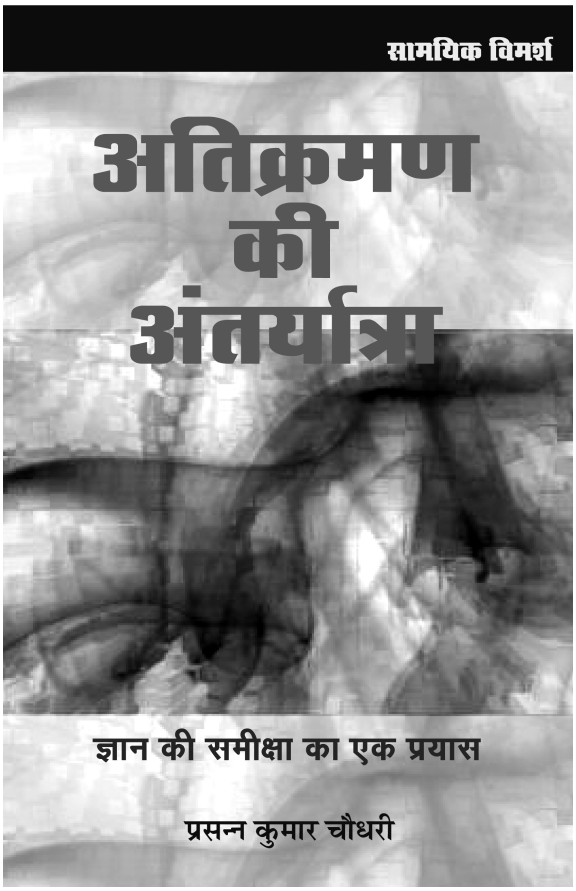

मानव-अर्जित प्रकृति-सापेक्ष स्वतंत्रता स्त्रियों, उत्पादक श्रम से जुड़े जनों, जातियों और वर्गों अर्थात् बहुसंख्या की परतंत्रता पर आधारित थी। अपने स्वरूप में परिवर्तन के बावजूद, इस बहुसंख्या की परतंत्रता का यह सिलसिला आज तक जारी है। इस परतंत्रता से मुक्ति न्याय है, और चूँकि इस परतंत्रता के कई आयाम हैं, इसीलिए न्याय का प्रश्न भी मानव इतिहास में अनेक आयामों में उपस्थित होता रहा है। समग्र रूप से देखें तो परतंत्रता के कारण भी अब तक मानव-मस्तिष्क का अस्तित्व खण्डित रहा है। साथ ही उसकी मस्तिष्क-क्रिया अथवा सामूहिक ज्ञान-क्रिया या कार्य-सक्रियता भी सीमित, कुंठित और बाधित रही है। न्याय का अर्थ है खण्डित, सीमित, कुंठित और बाधित स्थिति से मस्तिष्क की, ज्ञान की मुक्ति ताकि वह अपनी सारी सम्भावनाएँ तथा क्षमताएँ साकार कर सके। ज्ञान की मुक्ति न्याय में है और अगर ज्ञान न्याय के साथ प्रस्थान नहीं करता तो खण्डित और बाधित ज्ञान की विद्रूपताओं और विभीषिकाओं से मानव-जाति मुक्त नहीं हो सकती। इसीलिए ज्ञान की पहली चुनौती न्याय की स्थापना है, और उसका प्रस्थान-बिंदु न्याय का विवेक है।

भारतीय भाषा कार्यक्रम
CSDS
विकासशील समाज अध्ययन पीठ
वाणी प्रकाशन